Vol.12 June'19 No.11
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण

BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

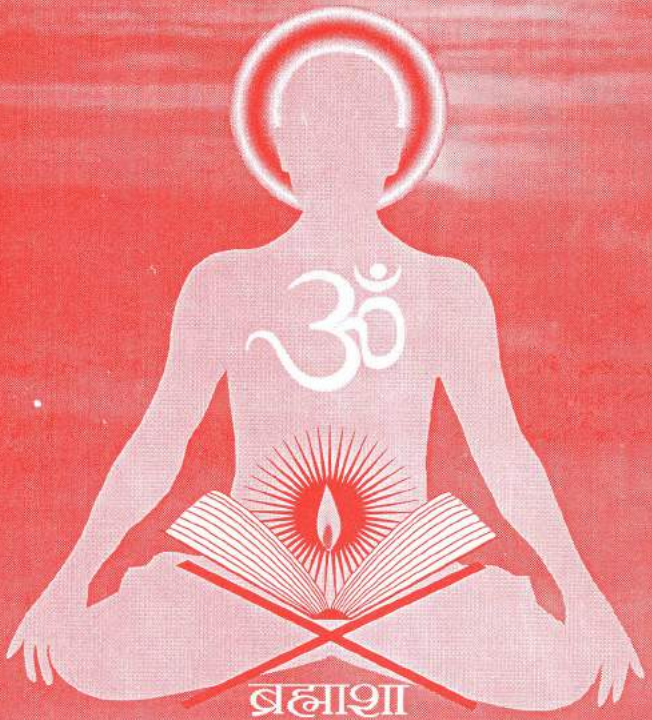

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन
C2A/58 Janakpuri, New Delhi - 110058

ब्रह्मार्पण के पाठकों से विनम्र निवेदन

ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउंडेशन द्वारा जुलाई 2007 में ब्रह्मार्पण का प्रथम अंक प्रकाशित किया गया था जिसका विधिवत् लोकार्पण कृष्ण जन्माष्टमी के शुभ अवसर पर आर्य समाज सी-ब्लॉक, जनकपुरी में वैदिक विद्वान आचार्य आर्यनरेश के कर कमलों से हुआ था। इसे प्रकाशित होते हुए लगभग बारह वर्ष हो गए हैं। हमारे सुधी पाठकों के सहयोग से और मुद्रक (प्रिंटर) की सहायता से इसमें कभी व्यवधान नहीं आया।

हमारा प्रयास रहा है कि ब्रह्मार्पण के अंकों में हम वेदों, उपनिषदों, गीता, मनुस्मृति आदि आर्ष ग्रंथों की समाग्री पाठकों तक पहुँचाएँ। प्रतिष्ठान का यह भी प्रयास रहा है कि सामग्री इतिहास और वैदिक साहित्य में पाश्चात्य विद्वानों और भारतीय अनुगामी भारतीय इतिहासकारों ने जो विकृतियाँ पैदा कर दी हैं उन्हें उजागर करके पाठकों को वेदों और भारतीय इतिहास के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराया जाए।

हमें खेद से सूचित करना पड़ रहा है कि अचानक हमारे मुद्रक ने अपना प्रकाशन कार्य बन्द कर दिया है। अतः अब ब्रह्मार्पण प्रकाशन में व्यवधान आ गया है। हमारा प्रयास है कि इसके प्रकाशन की कुछ वैकल्पिक व्यवस्था की जाए। परन्तु अभी हम इस विषय में आश्वस्त नहीं हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि वह हमारे प्रयास में सहायक हो। इस विषय में जो प्रगति होगी उससे आपको अवगत कराते रहेंगे।

Hello dear readers,

Now U can get updates and new issues of your beloved Vedic Magazine 'BRAHMAPAN' by subscribing to our Facebook Page.

Search for 'Brahmarpan' group of Facebook and join us to embark on Divine Vedic Path leading to spirtuality and knowledge.

Brahmarpan June'19 Vol. 12 No.11
ज्येष्ठ–आषाढ़ 2076 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha
Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar 0124-4948597
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer

Editorial Board

Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Shri Shiv Kumar Madan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

CONTENTS

1. ब्रह्मार्पण के पाठकों से विनम्र निवेदन –2
2. सत्यमेव जयते नानृतम्
–भारत भूषण विद्यालंकार –4
3. वेद के प्रादुर्भाव की कहानी
–डॉ. भद्रसेन –7
4. बढ़ता जलसंकट–चिन्तनीय स्थिति–*सुन्दरलाल बहुगुणा–10*
5. अमेरिकी पत्रकार जेनेट लेवी की बंगाल की दशा पर रिपोट –15
6. तलाश *–हरवंश लाल कपूर –20*
7. प्रतीक और प्रतिमाएँ ईश्वर तक पहुँचने के मार्ग नहीं
–आचार्य सूर्या देवी चतुर्वेदा–21
8. धरती हमें पुरखों से विरासत में नहीं बल्कि बच्चों से उधार मिली है *–रिपोट –30*
9. The Beginning of Dacay of Indian Culture -32
- Pt. Bahadur Mal

संपादकीय

सत्यमेव जयते नानृतम्

-भारत भूषण विद्यालंकार

शास्त्रों में सत्य के महत्व का स्थान-स्थान पर प्रतिपादन किया गया है। इसी संदर्भ में कहा है-

'सत्यमेव जयते' अर्थात् सत्य की विजय होती है। उपनिषद् में ब्रह्मचारी को शिक्षा समाप्ति के समय दीक्षान्त भाषण में आचार्य उपदेश देते हुए कहता है 'सत्यं वद' जीवन में हमेशा सच बोलना। कभी झूठ न बोलना। सत्य क्या है? जो वस्तु या बात जैसी है उसको उसके यर्थाथ रूप में जानना, जब जो घटना जैसी हुई है या हो रही है, उसे वैसे ही सही रूप में जानना और उसका सही रूप में कथन करना, सत्य है। संसार के सभी व्यवहार सत्य पर टिके हैं, इसीलिए वेद में कथन है- "सत्येनोत्तभिता भूमिः"। सूर्य चन्द्रादि सभी ग्रह-उपग्रह सत्य के नियम से ही अपने स्थान पर स्थित हैं।

सामान्य व्यक्ति साधारणतया सत्य ही बोलता है। इसी पर सामाजिक व्यवहार टिका है। परन्तु लोग भय से या लोभ से, लाभ या हानि के डर से सत्य को छिपाते हैं और झूठ बोलते हैं। हम अपने सहज स्वभाव के कारण उसे सत्य मान लेते हैं। इस प्रकार हमारा ज्ञान असत्य से दूषित हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि हम यत्न करके सत्य को जानने का प्रयास करें। वेद का वाक्य है "हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्" व्यवहार में सत्य पर सांसारिक रोचक, मोहक, भ्रामक बातों का पर्दा पड़ा रहता है अतः झूठ हमें सत्य प्रतीत होता है इसलिए सत्य को हमें सप्रयास जानने की आवश्यकता होती है। योगदर्शन (2-31) में पतंजलि मुनि ने यम और नियमों

का वर्णन करते हुए इन्हें महाव्रत कहा है। जब व्यक्ति या समाज, इनके द्वारा अपना नियमन कर लेता है तब वह अपने भीतरी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं को जीत लेता है। सत्य भारतीय संस्कृति का अहिंसा के बाद दूसरा आधार स्तंभ है। सृष्टि के मूल सिद्धांतों की खोज करने वाले भारत के ऋषियों की खोज थी कि सत्य को कितना ही छिपाया जाए, वह झूठ के पहाड़ के नीचे दबा हुआ भी उसे खोद कर उभर आता है। सत्य प्रकाश के समान है। कितना ही घना अंधेरा हो, प्रकाश की एक किरण अंधेरे को दूर कर देती है।

वेद ज्ञान के ग्रंथ हैं

कितना ही ज्ञान पुस्तकों में संगृहीत है। जिन प्राचीन ग्रंथों में सत्य ज्ञान का संग्रह है उन्हें प्राचीन ऋषियों ने वेद कहा था। वेद 'विद् ज्ञाने' धातु से बना है, जिसका अर्थ है ज्ञान-सत्य ज्ञान। वेद सभी सत्य विद्याओं के ग्रंथ हैं। महर्षि दयानन्द ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना सत्यार्थप्रकाश में यही समझाने का प्रयत्न किया है कि जीवन में सदा सत्य को स्वीकार करने और असत्य को त्यागने का आग्रह करो। उनका विचार था कि वैदिक धर्म के सिद्धान्त वैज्ञानिक, सृष्टिक्रम के अनुकूल तथा उपयोगी हैं, जो सिद्धान्त या जीवनमूल्य सत्य पर आधारित होते हैं वे ही स्थायी व स्थिर रहते हैं। वैदिक संस्कृति का कहना है कि सत्य स्थायी होता है, जबकि असत्य कभी टिक नहीं सकता। लोग कहते हैं कि दुनिया में असत्य ही चलता है, सत्यवादी सदा कष्ट पाते हैं। पतंजलि के अनुसार अन्त तक टिकने वाला सिद्धान्त असत्य नहीं सत्य है।

सत्य का संबंध अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि यमों से है। यदि आप इन यमों का पालन नहीं करते तो आपको अपने दुष्कृत्यों को छिपाने के लिए पग-पग पर असत्य का सहारा लेना पड़ेगा। एक असत्य

को छिपाने के लिए सौ झूठ बोलने पड़ेंगे। सत्य का सदाचरण से घनिष्ठ संबंध है। जब तक चिन्तन, वचन और आचरण में अन्तर रहेगा, सत्यव्रत का पालन नहीं हो सकता। आज का भौतिकवादी जीवन असत्य का जीवन है, अध्यात्मवादी जीवन सत्य का जीवन है। भौतिकवादी जीवन में हम मन में जो सोच रहे हैं वह जबान पर नहीं आने देते और जो जबान से कहते हैं उसे करने का हमारा इरादा नहीं होता। सोचते कुछ, कहते कुछ और करते कुछ और ही हैं। सत्यवादी के जो मन में होता है, वही वाणी से निकलता है जो वाणी से निकलता है वही कर्म में प्रकट होता है, कहा भी है– "यन्मनसा मनुते तद्वाचावदति, यद्वाचावदति, तत्कर्मणा करोति।"

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्

शास्त्रकार का कथन है सच बोलो परन्तु प्रिय सच बोलो। जिस साधक ने सत्य बोलने का व्रत धारण किया है उसे मृदुभाषी और प्रियभाषी होना चाहिए। हमारे सत्य भाषण से किसी को कष्ट नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि आपके सामने से कोई गाय जा रही हो और उसे खोजता हुआ कोई कसाई आपसे पूछे कि आपने यहाँ से गाय को जाते हुए देखा है तो आपको गाय की रक्षा के लिए यही कहना उचित होगा कि मुझे पता नहीं। सच बोलने का उद्देश्य समाज को सुखी बनाना और परस्पर सौहार्द बढ़ाना होना चाहिए।

महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में लिखा है: **"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्"** अर्थात् जो व्यक्ति सत्य व्रत की साधना पूर्ण कर लेता है उसकी क्रियाएँ सफल होती हैं यानि वह जो कुछ कह देता है वह पूरा हो जाता है क्योंकि लोगों को उसकी सत्यता पर विश्वास होता है। अतः वे उसे पूरा सहयोग देते हैं। **'सत्यमेव जयते'** का यही भाव है कि सत्य भाषण करने वाले की सदा विजय होती है।

वेद के प्रादुर्भाव की कहानी

–डॉ. भद्रसेन

समानं मन्त्राभिमन्यत्रे वः

तुम्हारे लिए, बात को समझने वालों के लिए, ज्ञान के पात्रों के लिए, ज्ञान के अभिलाषियों के लिए **समानम्**– एक जैसे, सब पर समान रूप से लागू होने वाले मन्त्रम्–(विशेष शब्दों के समूह को, ऐसे मन्त्र से प्रकट होने वाले अर्थ/भाव को) विचार को, रहस्य को, सन्देश को, प्रेरणा को, संसार की व्यवस्था को अभिमन्त्रये– बोलता हूँ, प्रकट करता हूँ, प्रेरित करता हूँ, सामने लाता हूँ।

व्याख्या

तुम सब ज्ञान प्राप्त कर सकते हो, अतः ज्ञान के पात्र हो, क्योंकि तुम्हारा प्रत्येक कार्य, व्यवहार ज्ञान के बिना नहीं चलता, अतएव तुम ज्ञान के अभिलाषी हो। मनुष्यों का ज्ञान अधिकतम नैमित्तिक है। प्रत्येक मनुष्य को किसी निमित्त–सहायक रूपी शिक्षक, गुरु से ही विद्या प्राप्त होती है, उसे स्वयं विद्या नहीं आती। यह नियम सभी स्थानों, कालों और व्यक्तियों पर समान रूप से पहले भी था, आज भी है। यतो हि प्रभु के बनाए नियम सभी के लिए समान रूप से हैं। इन में किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं है। हमने कुछ को विशेष सिद्ध करने के लिए विशेष कल्पनाएँ की हैं। पर प्रकृति के नियम सर्वत्र सदा अटल, एकरस, अटूट हैं। उनमें किसी के लिए किसी प्रकार का अन्तर नहीं है।

समानम् सभी स्थानों, कालों, व्यक्तियों पर जो बिना पक्षपात, भेदभाव के लागू होता है। जिसमें बिना पक्षपात काल, स्थान, व्यक्ति की दृष्टि से किसी प्रकार की भिन्नता नहीं होती। जैसे भगवान के बनाए संसारी प्राकृतिक पदार्थों जल, वायु, सूर्य आदि को व्यवहार में देखते हैं। वे सभी व्यक्तियों, कालों, स्थानों के प्रति एक जैसा ही व्यवहार,

अपने कार्य करते हैं। प्रकृति की ओर से किसी का भी मुँह देखकर भेदभाव, व्यवहार नहीं होता। हम ने चाहे कितनी कहानियाँ, घटनाएँ बना रखी हैं। पर व्यवहार में कहीं कैसा भी भेदभाव नहीं है। केवल कल्पना में ही भेदभाव चर्चित होता है।

व्यवहार में मिलने वाली इसी समानता को ही सामने रखकर इसी मन्त्र में है- **समानेन वो हविषा जुहोमि वः** - तुम्हारे प्रति समानेन-एक जैसी हविषा- (हवन सामग्री की तरह) देने लेने की वस्तुओं को जुहोमि - (आहुति के समान) देता हूँ, व्यवस्था करता हूँ, जैसे जल सभी की प्यास बुझा कर शान्ति देता है, स्नान, सफाई द्वारा सभी की गन्दगी दूर होकर शुद्धि आती है। जैसे कि हम देखते हैं, कि यज्ञ (अग्निहोत्र) करने वाले एक जैसी ही घी, सामग्री की आहुति देते हैं। जो पहले से सभी के लिए समान रूप से बनाकर रखी गई होती है। शास्त्र विधि में जो विहित हैं वहाँ सभी यज्ञ करने वाले समान मन्त्रों का ही पाठ करते हैं। ऐसे ही हम देखते हैं, कि हमारे चारों ओर परमात्मा की बनाई हुई (सूर्य, वायु, जल, धरती और उसके अन्न, धातु, खनिज आदि) चीजें भी सभी के लिए एक जैसी ही होती हैं। उनके व्यवहार, प्रभाव में किसी के प्रति किसी प्रकार का अंतर नहीं होता।

जैसे एक कर्ता की सभी रचनाओं में कला की दृष्टि से एकरुपता होती है। ऐसे ही संसार और वेद रूपी ईश्वरीय ज्ञान में एकरूपता होनी चाहिए क्योंकि जब दोनों एक ही रचनाकार की रचनाएँ हैं जैसे भूगोल और सच्ची भूगोल पुस्तक में समानता दिखाई देती है। इसीलिए महर्षि दयानन्द ने ईश्वरीय ज्ञान की एक पहचान प्राकृतिक, नियमों, पदार्थों से एकरूपता बताई है। **समानम्** यहाँ मंत्र का विशेषण है। **मन्त्रम्** शब्द मन और मत्रि धातु से बनता है, मन- मनन, विचार, अवबोधन के अर्थ में है, तो मंत्रि-गुप्त रहस्य,

छिपी बात के अर्थ में है। इसीलिए आज भी यही मन्त्री बनते हुए दो प्रतिज्ञाएँ करते हैं। अपने कार्य के विचार, योजना की और अपेक्षित रहस्य, भेद गुप्त रखने की। हमारे साहित्य में वेद के लिए जहाँ मंत्र शब्द आया है। **(प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।** (ऋ.-40.5 यजु. 34,57) वहाँ उस की एक ईकाई को भी मन्त्र कहते हैं। क्योंकि उन में विचार भरी, रहस्यपूर्ण बात की चर्चा होती है। इसी प्रकार विशेष शब्दों के समूह को मन्त्र कहते हैं। जो कि गायत्री, अनुष्टुप् आदि अनेक छन्दों, पद्यों में होते हैं। मन्त्र शब्द इसके साथ अपने शब्दों से कहे गए अर्थ, भाव, बात, वस्तु की ओर भी संकेत करता है।

अभिमन्त्रये- यह शब्द एक विशेष भावना दे रहा है, कि ईश्वर सर्वव्यापक, निराकार है। इसका हमारी तरह मुख, कण्ठ, दन्त, जिह्वा आदि बोलने के अंग नहीं है। अतः शरीर रहित प्रभु हमारी तरह बोल नहीं सकता। इसीलिए **अभिमन्त्रये** शब्द कह रहा है, कि ईश्वर सर्वशक्तिमान होने के साथ सब के हृदयों को अन्दर से प्रेरणा देता है, नियन्त्रण करता है। वह सर्वान्तर्यामी संसार में पहले-पहल आए व्यक्तियों के हृदय में ज्ञान की प्रेरणा देता है। जैसे मैसमरेजम वाले या योगी विशेष को आन्तरिक प्रेरणा देते हैं। ऐसे ही ईश्वर ने पहले-पहल के व्यक्तियों के हृदय में वेद विद्या का संचार किया। क्योंकि उस समय पढ़ने-पढ़ाने का और कोई विकल्प नहीं था।

जैसे अन्य कोई विकल्प न होने से ईश्वर ने सूर्य, वायु आदि का प्रथम काल में निर्माण किया। ऐसे ही ज्ञान विकास का और कोई उपाय न होने से वेद के रूप में ज्ञान दिया। वेद का अर्थ ज्ञान भी है और विजडम शब्द इसकी पुष्टि करता है। सूर्य आदि की तरह वेद को भी वेद ने प्रथमज कहा है। जिसका अर्थ है, जो प्रारम्भ में हुआ।

182 शालीमार बाग, होशियार पुर (पंजाब)

बढ़ता जलसंकट-चिन्तनीय स्थिति

-सुन्दरलाल बहुगुणा

मेरा जन्म उत्तराखण्ड के भागीरथी के तट पर एक छोटे से गाँव में हुआ था और बचपन से ही मैं पहाड़ों की पारिस्थितिकी को देखता रहा हूँ। हमारे गाँव के सामने प्रतापनगर की चोटियों पर खूब बर्फ पड़ती थी, अब वह दिखाई नहीं देती। भागीरथी में पानी का बहाव, जो मैंने बचपन में देखा था, उसके मुकाबले अब आधा रह गया है। गंगोत्री ग्लेशियर मैंने पहली बार 1978 में देखा। यह गंगा का उद्गम है, मेरा मार्गदर्शन गंगोत्री मंदिर के तीर्थ-पुरोहित कमलेश कुमार पण्डा कर रहे थे। उन्होंने बताया कि उनके देखते-देखते ग्लेशियर बहुत पीछे खिसक गया है। अब उसके नीचे से नंगे पहाड़ दिखते हैं। अब तो कुछ विशेषज्ञों की भविष्यवाणी है कि सन् 2025 में उसमें नाम मात्र के लिए बर्फ रहेगी। हमारे पहाड़ी गाँवों में नालों और चश्मों में पानी निरन्तर घट रहा है। मैदानी क्षेत्रों में पिछले पचास वर्षों से नलकूपों की संख्या एक हजार से बढ़कर साठ लाख से ऊपर पहुँच गई है। भूमिगत जल का स्तर निरंतर नीचे जा रहा है। इस प्रकार ऐसी स्थिति आ सकती है, जब जल का ही अकाल पड़ जाएगा। जल को कहीं विदेशों से आयात नहीं किया जा सकता। जल के बिना हमारा विकास ठप्प हो जाएगा। रहीम ने तो पहले कह दिया था- रहिमन पानी राखिये, बिना पानी सब सून।

यह सूनापन न आवे, यह चिंता का विषय है। इसको न तो दिल्ली की केन्द्रीय सरकार दूर कर सकती है और न राज्यों की सरकारें ही। आजादी के बाद हमारे देश में जन-अभिक्रम समाप्त हो गया है और अब समस्याओं के समाधान के लिए हम सरकार की ओर देखते हैं। जब मैंने गोमुख में गंगा के उद्गम में ही जल संकट देखा तो

हम पर्वतीय लोगों ने, खासतौर से महिलाओं ने एक अद्भुत आंदोलन चलाया। वे व्यापार के लिए हरे पेड़ों की कटाई रोकने के लिए पेड़ों पर चिपक गईं। उन्हें विज्ञान का दुश्मन करार दे दिया गया, क्योंकि वनों की कटाई वैज्ञानिक वन-प्रबंध के नाम पर बनाई गई कार्य-योजना के आधार पर होती थी। 'चिपको' आंदोलन का नारा था- 'क्या है जंगल के उपकार? मिट्टी, पानी और बयार। मिट्टी, पानी और बयार, जिंदा रहने के आधार।'

इसके सामने कथित वैज्ञानिक वानिकी का यह नारा- 'क्या हैं जंगल के उपकार लीसा, लकड़ी और व्यापार।' न टिक सका और सन् 1981 में उत्तराखंड में और उसके बाद हिमाचल प्रदेश में एक हजार मीटर से अधिक ऊँचाई के क्षेत्रों में हरे पेड़ों की व्यापारिक कटाई पर पाबंदी लग गई। ये दोनों पहाड़ी राज्य हमेशा अर्थ संकट में रहते हैं, अतः हिमाचल प्रदेश ने फरवरी 2003 में पाबंदी हटा ली। जंगलों का संबंध पानी से जोड़ते हुए, शिमला और कुफरी के बीच के संरक्षण वन का हवाला देते हुए मैंने चंडीगढ़ में एक वक्तव्य दिया। सौभाग्य से उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायधीश की निगाह इस पर पड़ गई और उन्होंने हिमालच प्रदेश की सरकार को कोर्ट में तलब कर लिया कि वे क्यों पेड़ काटना चाहते हैं? न्यायालय ने पुनः हरे पेड़ों की कटाई पर पाबंदी लगा दी। इस पृष्ठभूमि में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के समक्ष अपनी चिंता व्यक्त करने गया था पिछले चौदह वर्षों से मैं एक अन्य समस्या से जूझ रहा हूँ। वह है- टिहरी में भागीरथी और भिलंगना- के संगम के नीचे बन रहा टिहरी बाँध।

इसके नीचे 70 किलोमीटर लंबा क्षेत्र, जिसका क्षेत्रफल 42 वर्ग किलोमीटर है पानी के नीचे डूब जाएगा। एक लाख लोग विस्थापित होंगे। समशीतोष्ण जलवायु और

खुले वातावरण में रहने के आदी लोगों को ऊष्ण क्षेत्र में सिमटी हुई थोड़ी जमीन पर धकेलने से उनका जीवन नारकीय हो जाएगा। केवल उत्तराखंड में ही टिहरी के अलावा नौ अन्य बाँध प्रस्तावित हैं। बाँधों का जीवन-काल सीमित होता है, क्योंकि गाद भर जाने के बाद वे बेकार हो जाते हैं। जब तक इनका दल-दल सूख न जाए, इनके जलाशय के नीचे की भूमि दूसरे उपयोग में नहीं आ सकती। इसके अलावा इनके द्वारा सिंचित भूमि हिमालय से स्वाभाविक रूप से बहकर आने वाली जंगलों की पत्तियों के सड़कर आने वाली खाद झील में ही रुक जाती है। फलतः किसानों को उसकी कमी की पूर्ति के लिए अधिक मात्रा में रासायनिक खादों का उपयोग करना पड़ता है। इससे जमीन नशेबाज बन जाती है। उतनी ही पैदावार लेने के लिए रासायनिक खाद की मात्रा बढ़ानी पड़ती है। इससे मिट्टी की नमी के कारण आपस में जुड़े हुए कण धूल में बदल जाते हैं, इस से धूलभरी आँधियाँ चलने लग जाती है।

पर्वतीय क्षेत्रों में वनस्पति का सघन कवच प्राकृतिक जलाशय का काम करता है। अंग्रेजों ने हिमालय के प्राकृतिक मिश्रित वनों को इमारती लकड़ी के शंकुधारी वनों में बदल दिया। चारा प्रजाति के पेड़ों को समाप्त कर लोगों को ढालों पर अनाज की खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया। जनसंख्या की वृद्धि के साथ इसका विस्तार होता गया। पूरा भूमि-उपयोग बदल गया। पशुओं की चराई ढालों पर होने लगी। नंगे और सीढ़ीनुमा खेतों से भूक्षरण की गति तीव्र हो गई। पानी के स्रोत सूखने लगे जल संकट को बढ़ाने में नगरों के विस्तार ने भी भूमिका अदा की है। नगरीय आबादी की पानी की आवश्यकताएँ देहाती आबादी से कई गुना ज्यादा होती हैं। प्रति परिवार कम से कम दस लीटर पानी तो पाखानों

को साफ करने में चला जाता है। इसके अलावा सीमेंट के फर्शों, सड़कों व नालों की धुलाई में पानी जाता है। बोतल बंद व शीतल पेयों की कंपनियाँ किस प्रकार पानी का संकट पैदा कर रही हैं, इसका ज्वलंत प्रमाण केरल व तमिलनाडु में उनकी कारगुजारियों से मिलता है। 1990 में कोकाकोला भारत में आई। केरल में उसका सबसे बड़ा प्लांट है। हजारों कृषकों के कुँओं का पानी लेकर उनके खेतों में कीचड़-कचड़ा फेंककर उन्हें विषाक्त कर दिया। निकट के गाँव पानी की कमी से परेशान रहते हैं। कुएँ सूख गए। प्लांट के लिए प्रतिदिन 15 लाख लीटर पानी बिना कोई मूल्य चुकाए निकाला जाता है। कचरे में जहरीली धातुएँ त्वचा, यकृत और गुर्दे की बीमारियों को जन्म देती हैं।

जल समस्या का समाधान सरकार नहीं कर सकती है। वे अधिक राजनैतिक प्रभाव वाले क्षेत्रों और नगरों में पर्वतीय, आदिवासी और अन्य पिछड़े हुए क्षेत्रों से पानी का निर्यात कर सकती है। इसके लिए वे दंडशील का प्रयोग करने तक में नहीं हिचकतीं। टिहरी गढ़वाल में जहाँ से 200 किलोमीटर दूर गन्ना पैदा करने और दिल्ली को, जहाँ यमुना दूषित हो गई है, पेयजल पहुँचाने के लिए भागीरथी पर बाँध बनाया जा चुका है, जल-संकट ग्रस्त रैका पट्टी के पचास गाँवों के लिए पानी पंप करने की प्रताप नगर योजना को इसलिए रद्द कर दिया गया कि इससे टिहरी बाँध जलाशय के लिए पानी कम पड़ेगा। इस जल अभाव के क्षेत्र में कुछ नहीं होता, अतः पुरुष रोजी-रोटी कमाने दूर चले जाते हैं। घर में महिलाएँ नारकीय कष्ट झेलने के लिए रह जाती हैं। पिछले पचास वर्षों से कम से कम सौ महिलाओं ने भगीरथी में छलांग लगाकर आत्महत्या कर ली। बाँध जलाशय बन जाने से आत्महत्या करना आसान हो गया है।

जल-समस्या का समाधान पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। प्रत्येक घर के साथ छत के पानी की बावड़ी और गाँव के स्तर पर तालाबों को खोदा जाना चाहिए। पूरे हिमालय क्षेत्र को अनिवार्यतः फलदार पेड़ों से ढका जाए जिसमें प्राथमिकता के क्रम में अखरोट, बेशनट, मीठा वांगर, सूखे मेवे, तैलीय बीच (चुलू), शहद के लिए पद्म जैसे फूलों के पेड़ों, और अन्य प्रकार के मौसमी फलों के पेड़ों, चारे के पेड़ों, पत्तियों की खाद व रेशा प्रजापति के पेड़ों से ढकना होगा। हमारे भंडारों में जमा अनाज वृक्ष को बढ़ावा देने के लिए ग्रामीणों की मजदूरी व प्रोत्साहन के रूप में देकर यह कार्य एक जन आंदोलन के द्वारा बड़े पैमाने पर संपन्न किया जा सकता है। अगम्य क्षेत्रों में सैनिक व अर्द्धसैनिक बलों के द्वारा वृक्षारोपण सम्पन्न किया जाए।

वृक्षारोपण के परिणाम तो देर से मिलेंगे, तात्कालिक कार्यक्रम तो पानी के उपयोग में कमी को प्रोत्साहन देने तथा उन प्रवृत्तियों-खेती व उद्योगों के विकल्प खड़े करने का हो- जिनमें पानी की अधिक खपत होती है।

संक्षेप में मैं सूत्र प्रस्तुत करना चाहता हूँ-कम उपयोग, विकल्प और वृक्षारोपण और दूसरा है वृक्षारोपण में पंच जीवन-वृक्ष खाद, चारा, ईंधन और इमारती लकड़ी, पत्तियों की खाद और रेशा देने वाले पेड़। यह स्थायी खेती होगी। इससे भारत भूमि पुनः जैसे बंकिम बाबू ने गाया था, 'सुजलां, सुफलां, शस्य-श्यामलाम्' बन सकेगी। हम बढ़ती हुई जनसंख्या के बावजूद प्राणवायु, जल, खाद, वस्त्र और आवास का प्रबंध विकेन्द्रित ढंग से गाँव-गाँव और नगर-नगर में कर सकेंगे। भूमि का अधिक से अधिक उत्पादक उपयोग हो सकेगा।

अमेरिकी पत्रकार जेनेट लेवी की बंगाल की दशा पर रिपोट-

अमेरिका से आई बंगाल के बारे में ऐसी खौफनाक रिपोर्ट, जिसने पूरी दुनिया में तलहका मचा दिया है। कभी भारतीय संस्कृति का प्रतीक माने जाने वाले बंगाल की दशा आज क्या हो चुकी है, यह बात तो किसी से छिपी नहीं है। हिन्दुओं के खिलाफ साम्प्रदायिक दंगे तो पिछले काफी समय से होना शुरू हो चुके हैं और अब तो हालात ये हो चुके हैं कि हिंदुओं के त्यौहार मनाने तक पर रोक लगाई जानी शुरु हो गई। हाल ही में रामनवमी के पर्व पर हिन्दुओं के जुलूस निकालने पर भी ममता दीदी ने रोक लगा दी थी।

जेनेट लेवी का दावा – बंगाल जल्द बनेगा एक अलग इस्लामिक देश।

जेनेट लेवी ने अपने ताजा लेख में दावा किया है कि कश्मीर के बाद बंगाल में जल्द ही गृहयुद्ध शुरू होने वाला है, जिसमें बड़े पैमाने पर हिन्दुओं का कत्लेआम करके मुगलिस्तान नाम से एक अलग देश की माँग की जायेगी। यानि भारत का एक और विभाजन होगा और वो भी तलवार के दम पर और बंगाल की वोट बैंक की भूखी ममता बेनर्जी की सहमति से।

जेनेट लेवी ने अपने लेख में इस दावे के पक्ष में कई तथ्य पेश किए हैं। उन्होंने लिखा है कि "बँटवारे के वक्त भारत के हिस्से वाले पश्चिमी बंगाल में मुसलमानों की आबादी 12 फीसदी से कुछ ज्यादा थी, जबकि पाकिस्तान के हिस्से में गए पूर्वी बंगाल में हिन्दुओं की आबादी 30 फीसदी थी। आज पश्चिम बंगाल में मुसलमानों की जनसंख्या बढ़कर 27 फीसदी हो चुकी है। कुछ जिलों में तो ये 63 फीसदी तक हो गई है। वहीं

दूसरी ओर बांग्लादेश में हिंदू 30 फीसदी से घटकर केवल 8 फीसदी ही बचे हैं।"

बढ़ती हुई मुस्लिम आबादी को ठहराया जिम्मेदारः

बता दें कि जेनेट ने ये लेख 'अमेरिकन थिंकर' मैगजीन में लिखा है। ये लेख एक चेतावनी के तौर पर उन देशों के लिए लिखा गया है, जो मुस्लिम शरणार्थियों के लिए अपने दरवाजे खोल रहे हैं। जेनेट लेवी ने बेहद सनसनीखेज दावा करते हुए लिखा है कि किसी भी समाज में मुस्लिमों की 27 फीसदी आबादी काफी है कि वो उस जगह को अलग इस्लामी देश बनाने की माँग शुरू कर दें।

उन्होंने दावा किया है कि मुस्लिम संगठित होकर रहते हैं और 27 फीसदी आबादी होते ही इस्लामिक कानून शरिया की माँग के साथ अलग देश की माँग करने लगते हैं। पश्चिमी बंगाल का उदाहरण देते हुए उन्होंने लिखा है कि ममता बनर्जी के लगातार हर चुनाव जीतने का कारण वहाँ के मुस्लिम ही हैं। बदले में ममता मुस्लिमों को खुश करने वाली नीतियाँ बनाती है।

साऊदी से आने वाले पैसे से चल रहा है जिहादी खेल?

जल्द ही बंगाल में एक अलग इस्लामिक देश बनाने की माँग उठने जा रही है और इसमें संदेह नहीं कि सत्ता की भूखी ममता इसे मान भी जाए। उन्होंने अपने इस दावे की पुष्टि में लिखा है कि ममता ने सऊदी अरब के फंड से चलने वाले 10 हजार मदरसों को मान्यता देकर वहाँ की डिग्री को सरकारी नौकरी के काबिल बना दिया है। इन मदरसों में वहाबी कट्टरता की शिक्षा दी जाती है, और उन्हें गैर-मजहबी लोगों से नफ़रत करना सिखाया जाता है।

ममता ने शुरू किया इस्लामिक शहर बसाने का प्रोजेक्ट?

उन्होंने लिखा कि ममता ने मस्जिदों के इमामों के लिए तरह-तरह के वज़ीफे भी घोषित किए हैं, मगर हिन्दुओं के लिए ऐसे कोई वज़ीफे नहीं हैं। इसके अलावा ममता ने तो बंगाल में बाकायदा एक इस्लामिक शहर बसाने का प्रोजेक्ट भी शुरू किया है।

पूरे बंगाल में मुस्लिम मेडिकल, टेक्निकल और नर्सिंग स्कूल खोले जा रहे हैं, जिनमें मुस्लिम छात्रों को सस्ती शिक्षा मिलेगी। इसके अलावा कई ऐसे अस्पताल बन रहे हैं, जिनमें सिर्फ मुसलमानों का इलाज होगा। मुसलमान नौजवानों को मुफ्त साइकिल से लेकर लैपटॉप तक बाँटने की योजना है। इस बात का भी ख्याल रखा जा रहा है कि लैपटॉप केवल मुस्लिम लड़कों को ही मिले, मुस्लिम लड़कियों को नहीं।

जेनेट ने मुस्लिमों को आतंकवाद का दोषी ठहरायाः

जेनेट लेवी ने लिखा है कि बंगाल में बेहद गरीबी में जी रहे लाखों हिन्दू परिवारों का ऐसी किसी योजना का फायदा नहीं दिया जाता । उसने दुनिया भर की ऐसी कई मिसालें दी हैं, जहाँ मुस्लिम आबादी बढ़ने के साथ ही आतंकवाद, धार्मिक और अपराध के मामले बढ़ने लगे। आबादी बढ़ने के साथ ऐसी जगहों पर पहले अलग शरिया कानून की माँग की जाती है और फिर ये अलग देश की माँग तक पहुँच जाती है। जेनेट ने अपने लेख में इस समस्या के लिए इस्लाम को ही जिम्मेदार ठहराया है। उन्होंने लिखा है कि कुरान में यह संदेश खुलकर दिया गया है कि दुनिया भर में इस्लामिक राज स्थापित हो।

तस्लीमा नसरीन का उदाहरण किया पेश

जेनेट ने लिखा है कि हर जगह इस्लाम जबरन धर्म-परिवर्तन या गैर-मुसलमानों की हत्याएँ करवाकर फैला है। बंगाल में हुए दंगों का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है कि 2007 में कोलकाता में बांग्लादेशी लेखिका तस्लीमा नसरीन के खिलाफ़ दंगे भड़क उठे थे। ये पहली कोशिश थी जिसमें बंगाल में मुस्लिम संगठनों ने इस्लामी ईशनिंदा (ब्लैसफैमी) कानून की माँग शुरू कर दी थी।

भारत की धर्म निरपेक्षता पर उठाये सवाल

1993 में तस्लीमा नसरीन ने बांग्लादेश में हिन्दुओं पर हो रहे अत्याचारों और उनको जबरन मुसलमान बनाने के मुद्दे पर 'लज्जा' नामक पुस्तक लिखी थी। इसके लिखने के बाद उन्हें कट्टरपंथियों के डर से बांग्लादेश छोड़ना पड़ा था। वो कोलकाता में ये सोचकर बस गई थी कि वहाँ वो सुरक्षित रहेंगी क्योंकि भारत तो एक धर्मनिरपेक्ष देश है और वहाँ विचारों को रखने की स्वतंत्रता है। मगर हैरानी की बात है कि धर्म निरपेक्ष देश भारत में भी मुस्लिमों ने तस्लीमा नसरीन को नफ़रत की नज़र से देखा। भारत में उनका गला काटने तक के फतवे जारी किए गए। देश के अलग-अलग शहरों में कई बार उन पर हमले भी हुए। मगर वोटबैंक की भूखी वामपंथी और तृणमूल की सरकारों ने कभी उनका साथ नहीं दिया, क्योंकि ऐसा करने से मुस्लिम वोट बैंक खतरे में पड़ जाता।

बंगाल में होने लगी 'मुगलिस्तान' की माँग

जेनेट लेवी ने आगे लिखा है कि 2013 में पहली बार बंगाल के कुछ कट्टरपंथी मौलानाओं ने अलग 'मुगलिस्तान' की माँग शुरू कर दी। उसी साल बंगाल में हुए दंगों में

सैकड़ों हिंदुओं के घर और दुकानें लूट ली गईं और कई मंदिरों को भी तोड़ दिया गया। इन दंगों में सरकार द्वारा पुलिस को आदेश दिये गए कि वो दंगाइयों के खिलाफ कुछ न करें।

हिन्दुओं का बहिष्कार किया जाता है:

ममता को डर था कि मुसलमानों को रोका गया तो वो नाराज हो जाएँगे और वोट नहीं देंगे। लेख में बताया गया है कि केवल दंगे ही नहीं बल्कि हिन्दुओं को भगाने के लिए जिन जिलों में मुसलमानों की संख्या ज्यादा है, वहाँ के मुसलमान हिंदू कारोबारियों का बायकॉट करते हैं। मालदा, मुर्शिदाबाद और उत्तरी दिनाजपुर जिलों में मुसलमान हिंदुओं की दुकानों से सामान तक नहीं खरीदते।

यही वजह है कि वहाँ से बड़ी संख्या में हिन्दुओं का पलायन शुरू हो चुका है। कश्मीरी पंडितों की तरह यहाँ भी हिन्दुओं को अपने घरों और कारोबार छोड़कर दूसरी जगहों पर जाना पड़ रहा है। ये वो जिले हैं जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक हो चुके हैं।

आतंक समर्थकों को संसद भेज रही ममता।

इसके आगे जेनेट ने लिखा है कि ममता ने अब बाकायदा आतंकवाद समर्थकों को संसद में भेजना तक शुरू कर दिया है। जून 2014 में ममता बनर्जी ने अहमद हसन इमरान नामक एक कुख्यात जिहादी को अपनी पार्टी के टिकट पर राज्यसभा सांसद बनाकर भेजा। हसन इमरान प्रतिबंधित आतंकी संगठन सिमी का सह-संस्थापक रहा है।

हसन इमरान पर आरोप है कि उसने शारदा चिटफंड घोटाले का पैसा बंग्लादेश के जिहादी संगठन जमात-ए-इस्लामी तक पहुँचाया, ताकि वो बांग्लादेश में

दंगे भड़का सके। हसन इमरान के खिलाफ एनआईए और सीबीआई की जाँच भी चल रही है।

लोकल इंटेलिजेंस यूनिट (एलआईयू) की रिपोर्ट के मुताबिक कई दंगों और आतंकवादियों को शरण देने में हसन का हाथ रहा है। उसके पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी (आईएसआई) से रिश्ते होने के आरोप लगते रहे हैं। जेनेट के मुताबिक बंगाल का भारत से विभाजन करने की माँग से अब जल्द ही उठने लगेगी। इस लेख के जरिये जेनेट ने उन पश्चिमी देशों को चेतावनी दी है, जो मुस्लिम शरणार्थियों को अपने यहाँ बसा रहे हैं कि जल्द ही उन्हें भी इसी सब का सामना करना पड़ेगा।

तलाश

-हरवंश लाल कपूर

हर आत्मा को ईश्वर तेरी तलाश है।
तू मित्र बनके रहता सबके पास है।।
चाहत में तेरी ईश्वर जन-जन उदास है।
तेरी कृपा से वंचित प्राणी निराश है।।
परमेश्वर तुम्हारी करुणा की आश है।
तेरे बगैर कौन मेरा गमशनाथ है।।
आनन्द सार अमृत बरसाइये प्रभु।
अन्तःकरण में मेरे जन्मों की प्यास है।।
स्वार्थ सिद्ध जमाने की सोच दास है।
पवित्र सत्यनिष्ठा का कब अहसास है।।
परमेश्वर दया का वरदान दीजिए।
शुभ कर्मों से ही मिलता हर्ष और उल्लास है।।

सहमंत्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा,
मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001

प्रतीक और प्रतिमाएँ ईश्वर तक पहुँचने के मार्ग नहीं

-आचार्य सूर्या देवी चतुर्वेदा

ब्रह्माण्ड का स्वामी ईश्वर सर्वव्यापक है। सम्पूर्ण विश्व का कर्ता, धर्ता वही है, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय तीनों कर्मों की संचालित करने वाला वही एक ईश्वर है। इस ईश्वर के दर्शन में महदाश्चर्य यह है कि सब कुछ होते हुए भी चर्म चक्षुओं का विषय ईश्वर नहीं है, मानस प्रत्यक्ष का विषय है। ईश्वर के मानस प्रत्यक्ष को स्पष्ट करते हुए महर्षि कणाद कहते हैं-

आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम्।

(वैशे.द. 9/1/11)

अर्थात् बाह्य विषयों से हटकर आत्मनि-परमात्मा में आत्ममनसोः- आत्मा तथा मन का संयोग विशेष होने पर आत्मप्रत्यक्षम्-परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है।

कणाद ऋषि ने इस सूत्र में यह स्पष्ट किया है कि जब द्रष्टा की आत्मा और मन का संयोग विशेष परमात्मा में होता है, तब उस परमात्म देव का प्रत्यक्ष मन इन्द्रिय से होता है, यानी परमात्मा का मानस प्रत्यक्ष होता है, चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं।

परमात्मा के इस मानस प्रत्यक्ष को योगदर्शन में भी धारणा, ध्यान, समाधि आदि शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है।

ऐसे मानस प्रत्यक्ष वाले अद्भुत ईश्वर की प्राप्ति व उसके सान्निध्य आदि के लिए वर्तमान में चिन्तकों ने बहुत प्रकार की विधियाँ निर्दिष्ट की हुई हैं, प्रतीक एवं प्रतिमाएँ उन विधियों की बहुत बड़ा साधन हैं।

ईश्वर की प्राप्ति में साधन भूत माने जाने वाले प्रतीक एवं प्रतिमाओं को सम्पुष्ट करने वाला एक लेख पतंजलि

योगपीठ से प्रकाशित होने वाली 'योग संदेश हिन्दी' अगस्त 2006 ई. पत्रिका के पृष्ठ 47 पर योगर्षि स्वामी रामदेव का प्रकाशित हुआ है। जिसका शीर्षक है–

ईश्वर तक पहुँचने के मार्ग हैं प्रतीक और प्रतिमाएँ

स्वामी जी महाराज का यह लेख वदतो व्याघात–द्वैधता पूर्ण प्रतिपाद्य का संमिश्रण है। स्वामी जी के इस द्वैविध्य पूर्ण लेख को पढ़कर श्री भावेश मेरजा ने 'वेद प्रकाश' पत्रिका के 26 जनवरी 2007 ई. अंक 6 में 'योग ऋषि का चिन्तनीय ऋषित्व' शीर्षक से 12 पृष्ठों में अपने दुःख को व्यक्त करते हुए महर्षि दयानन्द के वचनों को उद्धृत कर स्वामी रामदेव जी के लेख की समीक्षा की है। तर्क व प्रमाणों से स्पष्ट किया है कि प्रतीक और प्रतिमाएँ ईश्वर प्राप्ति में सहायक नहीं हैं।

श्री भावेश मेरजा के 'वेद प्रकाश' में प्रकाशित लेख को पढ़कर खेरली अलवर निवासी जिज्ञासु भाई श्री प्यारे लाल मुकुट बिहारी जी ने पत्र द्वारा मुझे सूचित करते हुए लिखा–

आचार्या जी निवेदन है कि हमने 'वेद प्रकाश' में प्रकाशित जो भावेश का लेख 'प्रतिमा प्रतीक' के द्वारा ईश्वर की उपासना की जा सकती है या नहीं? लेख पढ़ा। सो हम सत्य असत्य का निर्णय नहीं कर पाये, सो निवेदन है कि आप इस लेख को पढ़कर हमें सत्य–असत्य वेदानुकूल बताने का श्रम करें। आपकी अति कृपा होगी।

मैं समझती हूँ सम्भवतः श्री भावेश मेरजा ने स्वामी जी के वाक्यों का उद्धरण प्रतिपृष्ठ देते हुए अपनी बात कही है, अतः समझना कठिन हुआ हो। वैसे तो लेख सुस्पष्ट ही है। अस्तु। मान्य भ्राता के अनुरोध को स्वीकार कर उनकी जिज्ञासा का समाधान कर रही हूँ।

बाबा रामदेव जी ने योग संदेश में जो ईश्वर तक पहुँचने

के प्रतीक और प्रतिमाएँ मार्ग बताये हैं वस्तुतः वेद, विरुद्ध अत्यन्त भ्रमोत्पादक हैं। स्वामी जी का लेख संदेह के घेरे से ग्रस्त है। स्वामी जी के द्वैधता पूर्ण भ्रम उत्पन्न करने वाले वाक्य हैं-

1. ये सब ईश्वर की उपासना नहीं कर रहे हैं पर प्रतीक की उपासना करते हैं, जो ईश्वर के समीप हैं।
2. ये प्रतीक-पूजा, हमें मुक्ति और स्वातन्त्र्य के पद तक नहीं पहुँचा सकतीं। यह तो हमें उन विशेष चीज़ों को दे सकती हैं जिनके लिए हम उनकी पूजा करते हैं।
3. मैं तो कहता हूँ - चित्र की नहीं, चरित्र की उपासना करो, व्यक्ति नहीं व्यक्तित्व की पूजा करो।
4. दो प्रकार के मनुष्यों को किसी मूर्ति की आवश्यकता नहीं होती, एक तो मानव रूपधारी पशु, जो कभी धर्म का विचार ही नहीं करता और दूसरा पूर्णत्व को प्राप्त हुआ व्यक्ति, जो इन सब सीढ़ियों को पार कर गया होता है।

   इन दोनों छोरों के बीच में ही सबको किसी न किसी बाहरी या भीतरी आदर्श की आवश्यकता होती है।
5. हमारे ग्रन्थों ने प्रतीकों को माना है। मन को ईश्वर मानकर पूजा करना। किसी भी वस्तु को ईश्वर मानकर पूजा करना एक सीढ़ी ही है। वह परमेश्वर की ओर मानों एक कदम बढ़ाने, उसके कुछ अधिक समीप जाने के समान हैं।

   इन पंक्तियों को लिखकर स्वामी जी ने अरुन्धती का उदाहरण दिया है, जिसका सार है, जैसे अरुन्धती को दिखाने के लिए उसके समीप जो बड़ा तारा है उसे दिखाते हैं पुनः उससे छोटा जो तारा है उसे दिखाते हुए क्रमशः अरुन्धती तक ले जाते हैं।

6. उसी तरह ये भिन्न-भिन्न प्रतीक, प्रतिमाएँ ईश्वर तक पहुँचा देती हैं। प्रतीक का अर्थ है ओर आना या समीप पहुँचना।

इन पंक्तियों के लेखक ने प्रतीक और प्रतिमाओं के जो चिह्न दिये हैं, वे चिह्न हैं - सूर्य, स्वस्तिक, कलश, तारा सहित अर्ध चन्द्र ऊँ, हस्तस्थ स्वस्तिक। स्वामी जी के 1,2,3 संख्या के वाक्यों से प्रतीत होता है कि प्रतीक और प्रतिमाएँ ईश्वर तक पहुँचने के पूर्ण मार्ग नहीं हैं, पर ईश्वर के समीप हैं। इन संख्याओं के वाक्यों से यह सन्देह भी रहता है कि जो स्वयं जड़ हैं, वे प्रतीक व प्रतीमाएँ विशेष चीज़ें कैसे प्रदान करती हैं? स्वामी जी के 4,5,6 संख्या के वाक्यों से घोषित होता है कि प्रतीक और प्रतिमाएँ ईश्वर तक पहुँचने के बहुत बड़े साधन हैं।

स्वामी जी के ये मन्तव्य वेद, दर्शन उपनिषद् व तर्क पर खरे नहीं उतर सकते। ईश्वर की प्राप्ति में प्रतीक व प्रतिमाएँ कदापि साधन नहीं हो सकतीं। परमेश्वर की प्राप्ति में तो ध्यान, उपासना ही सहायक हैं। प्रतीक व प्रतिमाएँ साकार व एकदेशीय वस्तुओं की उपलब्धि में सहायक होते हैं, सर्वव्यापक, निराकार ईश्वर की प्राप्ति में नहीं। प्रतीक व प्रतिमा शब्द का अर्थ है-

प्रति एति येन तत् प्रतीकम्-अर्थात् जिसके द्वारा किसी ओर जाया जाये, वह प्रतीक होता है।

प्रतीक की इस व्युत्पत्ति के अनुसार साकार वस्तुएँ वृक्ष, कूप, नदी, मनुष्य, पशु आदि प्रतीक हैं।

प्रतिमीयन्ते परिमीयन्ते सर्वे पदार्थाः यया सा प्रतिमा-अर्थात् जिसके द्वारा पदार्थों का परिमाण जाना जाये (माङ् माने) एवं क्रिया व परिमाण के साधन प्रतिमा हैं।

प्रतिमा की इस व्युत्पत्ति के अनुसार तोलने का साधन बाट,

खारी, तराजू आदि तथा तोलने की क्रिया प्रतिमा हैं। तात्पर्य हुआ प्रतीक और प्रतिमा साकार वस्तु तक पहुँचाने वाले साधन हैं- जैसे किसी अनजान व्यक्ति को डी.एम. के गृह पर पहुँचाने के लिए जो चिह्न बताये जाएँ, कि डी.एम. के गृह के समीप गुलमोहर का वृक्ष है, वहीं डी.एम. का निवास है। इस निर्देश से साकार प्रतीक से साकार गृह तक तण्डुल, गोधूम गोधर्म आदि भूमि, वस्त्र, गृह भूमि तो नहीं करते हैं आदि की परिभाषा नाप के लिए बाट खासी आदि अथवा इंचिटेप आदि हैं वे सब प्रतिमस है। यहाँ भी साकार से साकार को नापा जोखा जा रहा है।

निराकार ईश्वर की प्राप्ति में प्रतीक और प्रतिमा दोनों ही साधन नहीं हो सकते, क्योंकि ईश्वर की एकदेशीय अवधि नहीं है, वह सर्वव्यापक है। ऐसी स्थिति में मूर्ति को ईश्वर प्राप्ति का साधन माने तो वृक्षादि भी कम नहीं पड़ेंगे, वे भी साधन बनेंगे, क्योंकि उनमें भी ईश्वर व्यापक हैं। यदि चन्द्र को मानते हैं, तो सूर्य की हेठी होगी, क्योंकि सूर्य में भी ईश्वर हैं। सूर्य को साधन मानते हैं तो तारों की अवमानना होगी, उनमें भी ईश्वर विद्यमान है।

इस प्रकार साधनों का बहुत बड़ा क्रम बनता जायेगा, पर ईश्वर तक पहुँचना कठिन ही रहेगा। ईश्वर के एकदेशीय न होने से। एवंविध अगम्य, अगोचर ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रतीक व प्रतिमाएँ साधन नहीं हैं।

उपनिषदों में प्रायः ईश्वर प्राप्ति के वाक्य उपलब्ध होते हैं, जो ईश्वरोपासना के प्रतीक माने जाते हैं, वे वाक्य हैं-

मनो ब्रह्मेत्युपासीत। छा. उ. 3/18/1

अर्थात् मन को ब्रह्म मानकर उपासना करें।

आकाशो ब्रह्म। छा. उ. 3/18/1
अर्थात् आकाश ही ब्रह्म है।
आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः। छा. उ. 3/19/1
अर्थात् आदित्य ही ब्रह्म है।
आदित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते। छा. उ. 3/19/4
अर्थात् सूर्य ही ब्रह्म है ऐसा मानकर उपासना करता है।
यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते। छा. उ. 7/1/5
अर्थात् जो संज्ञा को, बड़ा है, ऐसा मानकर उपासना करता है।
यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते। छा. उ. 7/2/2
अर्थात् जो वाणी को ब्रह्म मानकर उपासना करता है।
यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते। छा. उ. 7/4/3
अर्थात् जो संकल्प को ब्रह्म मानकर उपासना करता है।
योऽन्नं ब्रह्मोपासते। तै. उ. 2/2/1
अर्थात् जो अन्न का ब्रह्म मानकर उपासना करता है।
ये प्राणं ब्रह्मोपासते। तै. उ. 2/3/1
अर्थात् जो प्राण को ब्रह्म मानकर उपासना करता है।
उपनिषदों में एतादृश अनेकों वाक्य प्राप्त होते हैं। इन सब वाक्यों में मन, आकाश आदि नाम आये हैं जिनको देखकर प्रतीत होता है कि ये दृश्यमान शब्द स्वरूप वाच्य पदार्थ ही ब्रह्म हैं, ये पदार्थ ब्रह्म तक पहुँचाने वाले हैं। किन्तु **ओ३म् क्रतो स्मर,** यजु. 40/15, अर्थात् हे कर्मशील जीव तू! ओ३म् पदवाच्य ईश्वर का स्मर-स्मरण, चिन्तन (स्मृ चिन्तायाम्) कर इस वेदाज्ञा से सुस्पष्ट है कि ब्रह्म की उपासना ओ३म् संज्ञा पद द्वारा होनी चाहिए। पुनः सन्देह होता है, इन वाक्यों में आदित्य आदि किसके ग्राहक हैं, इसका स्पष्टीकरण करते हुए महर्षि बादरायण कहते हैं-
स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्। वेदा. दा. 2/3/5
अर्थात् एक ही शब्द के गौण और मुख्य भेद से अनेक

प्रकार के प्रयोग होते हैं। जैसे - एक ही ब्रह्म शब्द के मुख्य, गौण भेद से प्रयोग होते हैं।

तात्पर्य हुआ-मन, आदित्य, आकाश, अन्न, वाणी, संकल्प आदि के साथ ब्रह्म का प्रयोग गौण है और जगत् स्रष्टा परमेश्वर में ब्रह्म का अर्थ मुख्य है।

इस प्रकार **मनो ब्रह्मेत्युपासीत** आदि प्रयोगों में ब्रह्म का तात्पर्य बृहत्-बड़े से है तथा उपासीत का अर्थ विचार करे। मन सब इन्द्रियों में बड़ा है ऐसा विचार कर उसे वशीभूत करे। यही तात्पर्य आकाश इत्यादि के साथ भी लगेगा। उपासना तो ओ३म् ही की होनी है, उसकी ही करनी है।

ईश्वर की उपासना के लिए, उसकी प्राप्ति के लिए आकाश आदि की उपासना नहीं करनी है। आकाशादि का अस्तित्व ईश्वर के आश्रित है, मात्र इतना ही समझना है। आकाश, सूर्य आदि को प्रतीक मानकर ईश्वर की उपासना करना ईश्वर की उपासना नहीं कही जायेगी। प्रतीक उपासना तो अनीश्वर को ईश्वर मानना होगा। जैसा कि रामानुज आचार्य ने कहा है-

प्रतीकोपासनं नाम अब्रह्मणि ब्रह्मदृष्टयानुसन्धानम्। रामा. श्री भा. वेदा. द. 4/1/4

अर्थात् अब्रह्म में ब्रह्मदृष्टि का अनुसन्धान प्रतीकोपासना है, यानी अब्रह्म को ब्रह्म मानना प्रतीकोपासना है।

महर्षि बादरायण प्रतीकों की उपासना का निषेध करते हुए कहते हैं-

न प्रतीके न हि सः। वेदाः द. 4/1/4

अर्थात् प्रतीक- मूर्ति में ब्रह्म का अनुसन्धान करना ठीक नहीं है, क्योंकि वह ब्रह्मरूप नहीं है।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्। वेदा. द. 4/1/5

अर्थात् **परिभूः स्वयंभूः** यजु. 4/8 आदि श्रुतियों में ब्रह्म

का **उत्कर्षात्**-श्रेष्ठतम कहे जाने से। **ब्रह्मदृष्टिः**- ब्रह्म का ध्यान कर्तव्य है, प्रतीक का नहीं।

महर्षि बादरायण के इन वचनों से स्पष्ट है कि प्रतीक द्वारा ब्रह्म का चिन्तन करना शास्त्र विरुद्ध है।

ब्रह्म की उपासना की विधि क्या हो? इसके लिए भी महर्षि ने कहा-

आसीनः सम्भवात्। ध्यानाच्च। 4/1/7,8

अर्थात् स्थिर होकर, ध्यानपूर्वक उपासना करे। क्योंकि इसी रीति से उपासना सम्भव है।

इन सूत्रों पर भाष्य करते हुए शंकराचार्य लिखते हैं-

उपासनं नाम समानाप्रत्ययप्रवाहकरणं, न च तद्गच्छतो, धावतो वा सम्भवति गत्यादीनां चित्तविक्षेपकरत्वात्। तिष्ठतोऽपि देहधारणे व्यापूतं मनो न सूक्ष्म वस्तुनिरीक्षणक्षमं भवति।

शां. भा. वेदा. द. 4/1/7

अर्थात् समान ज्ञान का प्रवाह करना उपासना कही जाती है। चलने पर, दौड़ने पर उपासना सम्भव नहीं है। गति आदि से चित्त में विक्षेप होने से। खड़े होकर भी उपासना सम्भव नहीं है, देह धारण में लगा मन सूक्ष्म वस्तु का निरीक्षण नहीं कर सकता। सोने पर भी सम्भव नहीं है अकस्मात् निद्रा से अभिभूत होने से, अतः बैठकर ही उपासना सम्भव है।

तात्पर्य स्पष्ट है ईश्वर की उपासना बैठकर, ध्यानपूर्वक करनी चाहिए।

शास्त्रोक्त उपासना- प्रतीकाश्रय को छोड़कर उपासना करने वाले को ही ईश्वर प्राप्त होता है। यथा च

अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथाऽदोषात्क्रतुश्च।।

वेदा. द. 4/3/15

अर्थात् वह ब्रह्म प्रतीकोपासना न करने वाले को प्राप्त

होता है, ऐसा बादरायण कहते हैं, क्योंकि ब्रह्म प्राप्ति के दोषरहित दो - कर्मयोग, ज्ञानयोग मार्ग हैं, अन्य नहीं। और पुरुष जैसा करता है वैसा ही फल पाता है।

वेदान्त दर्शन के इस सूत्र का भाव है कि ईश्वर की प्राप्ति उनको ही होती है जो प्रतीकोपासना नहीं करते तथा ईश्वर प्राप्ति के कर्मयोग व ज्ञानयोग दो मार्ग हैं, उनमें प्रतीकोपासना करेगा, वह प्रतीक में ही भ्रमित रहेगा, ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

इस प्रकार प्रतीक-सूर्य, चन्द्र स्वास्तिक आदि चिह्नों एवं प्रतिमा- मूर्ति को ईश्वर मानकर ध्यान करना सर्वथा अनुचित व्यर्थ कार्य है। प्रतीक एवं प्रतिमा ईश्वर प्राप्ति के मार्ग नहीं हैं। इनके द्वारा ईश्वर तक नहीं पहुँचा जा सकता।

श्री स्वामी रामदेव जी ने प्रतीक और प्रतिमाओं को ईश्वर तक पहुँचाने का मार्ग किन परिस्थितियों में प्रतिपादन किया है, यह तो वे ही जानें। पर उनके इस प्रतिपादन से इतना तो स्पष्ट है कि वे वेद, महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज के सुस्पष्ट सिद्धान्तों से हटकर उसी उपासना पचड़े की विधि को प्रचारित करना चाहते हैं, जिनसे बचने के लिए ऋषिवर दयानन्द ने हरिद्वार के कुम्भमेले में पाखण्ड खण्डिनी पताका गाड़ी थी।

श्री स्वामीवर्य से निवेदन है कि वे एतादृशी द्विविधा पूर्ण विधियाँ बताकर भ्रम, संदेह जनमानस में उत्पन्न न करें।

पाणिनी कन्या महाविद्यालय,
वाराणसी-10

धरती हमें पुरखों से विरासत में नहीं बल्कि बच्चों से उधार मिली है-

आदि सभ्यताओं में पृथ्वी को सूर्य की परिक्रमा करने वाला 50 हजार खरब टन के खगोलीय पिंड के रूप में नहीं, बल्कि एक अबूझ दैविक अस्मिता समझा गया था। तब इसकी थाह पाना कठिन था। पृथ्वी की अंदरूनी परतों के स्वरूप की तो दूर, इसकी ऊपरी सतह को भी वैज्ञानिक थोड़ा ही जान सके हैं। न जाने कितने पौधों व जीवों का पता चलना अभी शेष है।

नामी वैज्ञानिक एडीसन ने कहा था, 'जब तक घास का तिनका हूबहू नहीं इजाद हो जाता, तब तक विज्ञान उपहास का पात्र रहेगा। रसायनों से बने इलाज के नुस्खे प्रकृति के उत्पादों या सौर्य किरणों की बराबरी कदापि नहीं कर सकेंगे। तमाम जैव-वनस्पतियों के ऊर्जा व पोषण के अक्षुण्ण स्रोत, रहस्यमय धरती को सर्वत्र माँ की संज्ञा दी गई।

संयुक्त राष्ट्र ने भी 1970 से प्रतिवर्ष 22 अप्रैल को पृथ्वी दिवस मनाते हुए, 2009 से इसे मातृ पृथ्वी दिवस का नाम दिया। सभी हिंदू अनुष्ठानों में पृथ्वी का आह्वान कर कृपा की कामना होती है। यही भाव भूमिपूजन में भी है। दक्षिण अमेरिका में पंचमामा, पुराने मिडिल ईस्ट में की, निन्हुसाग, निंटु मम्मा या अरुरु, सरहद के एशियाई देशों में फ्रा, माए, थोरानी, गाइया, आयरलैंड में दानू आदि की प्रथाएँ दर्शाती हैं कि धरती के प्रति माँ जैसा ही श्रद्धा का भाव हर जगह था। अल्प प्राणियों की भाँति मनुष्य पृथ्वी की संतान है, जिसे खुशहाल रखने के तरीके उसके पास हैं। हमारे स्थानीय पौधों में व्याधियों और विकृतियों के निराकरण के औषधीय गुण हैं। माँ से सान्निध्य की भाँति

धरती से तादात्म्य शरीर और मन को व्यवस्थित रखता है। आदि मानव इसके सान्निध्य में रहकर ही शरीर और मन से स्वस्थ, सहज और प्रसन्न रहता था। धरती और मनुष्य दोनों में मौजूद एक समान विद्युत प्रणाली और धरती के संपर्क से शरीर में यथोचित विद्युत स्तर बनने की पुष्टि से ग्राउंडिंग और नंगे पाँव चलने, दौड़ने की मुहिम पुख्ता हुई है। चिकित्सकों, खेलकूद विशेषज्ञों आदि ने नंगे पाँव चलने-दौड़ने की पैरवी शुरू की है। पहाड़ी इलाकों, पश्चिम बंगाल और दक्षिण भारत में आज भी पाँव नंगे रखने का रिवाज है। उपचार में अपनाई जा रही मृदा चिकित्सा आज भी प्रासंगिक है।

व्यक्ति और पृथ्वी के गठजोड़ को हम जितना बेहतर समझेंगे उतना ही संयत व दुरस्त रहेंगे। लेकिन जितना नदी प्रवाहों में अवरोध, वन कटाई, कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन जैसे खिलवाड़ करेंगे, उतना ही बाढ़, सूखा, मौसमों में उलटफेर जैसी आपदाओं से परेशान होते रहेंगे। हमें चीफ सीटल का कहा याद रखना होगा – 'धरती हमें पुरखों से विरासत में नहीं, बल्कि बच्चों से उधार मिली है।'

The Beginning of Dacay of Indian Culture

-Pt. Bahadur Mal

Up to the end of the Gupta period, the Indian culture remained in its full bloom, expressing itself exuberantly in various ways; in the great work of philosophy, art, drama, literature, science and mathematics. It was during this period, that it overflowed into and enriched the cultures of countries to the North-East and South-East of India. But after the Gupta period, as we approach the end of the first millenium A.D. we find a slakening of the sources of creative thinking. We do not come across any great work of original thought in any department of literatury and cultural activity, except perhaps in the domain of art. This was due to the influence and incentive provided by the foreign styles of art, brought into India by Muslim invaders. In the South of India, the growth of culture continued much longer. As the result of unsettled and chaotic conditions in North India, after the seventh century, many scholars and artists of the north migrated to the south, where they could carry on their work in a calm and undisturbed atmosphere.

This decay and arrest of growth were due to a number of factors, India was subbed to foreign domination, a number of times after the fall of the Mauryan dynasty. It regained its supremacy under the Gupta rule, and rose to great heights of splendour and power. But towards the end of the Gupta period, hordes of Huns entered India in successive waves of invasion. They were defeated ultimately by the combined armies of the last Gupta monarch and a ruler of Central India, Yasovarma by name. Their oft-repeated and long-down-out conflicts made North India weak and disintegrated; so that the Muslim conquerors, who came next, did not meet any great resistance at the hands of the divided and smaller kingdoms of India. Political subjection, extending over a long period naturally led to cultural decay, especially when the rulers happened to be of narrow and bigoted mentality, making it difficult for the culture of the land to flourish unhindered. We find the process of rejuvenation reasserting itself in the British period, but in the Muslim period there was not much scope for the free expression of Indian genius in religious, philosophical and scientific fields. The problem of cultural and racial survival became the all-important problem of the age.

"Why should political freedom be lost unless some kind of decay has preceded it? It is really a matter of wonder, that a huge

country like India with its vast man power should have succumbed to a handful of foreign invaders. Of course it is true, that nationalism is a recent development, even in the West, In India it is only in the British period, that the people began to think of themselves as a nation, and even after the country has become free, a great vigilance has to be kept against all fissiparous and anti-national tendencies in the form of casteism, provincilalism and communalism. But, as a rule, there was no All-India feeling in old times, and kingdoms fell one after the other before the onslaught of tough invaders, without getting any assistance from: neighbouring rulers.

But India had another source of weakness in its rigid and exclusive caste system. Even within the same State, it brought about a lack of cohesion. The caste system gave stability to society, but begot political weakness. The social sense developed in the direction of the family or the caste, and was altogether lacking in national consciousness, even within the borders of the same State. At the time of war only Kshatriyas fought. The rest of the people did not take part in flighting, or perhaps were not allowed to do so. "They were prepared to welcome any king or ruler or dynasty, Hindu or Muslim or Christian, provided they guaranteed ordered government and maintained the social liberty of each caste or community. That explains the facility, with which foreigners conquered our country, and the apparent passivity, with which most people accepted their rule.

But there was another way also, in which caste system played a part in bringing about cultural decay. As the result of caste system, more than eighty percent of people, who formed the lower classes, were denied all advantages of education, and opportunities of cultural growth and even among the higher classes the Kshatriyas and Vaisyas, as a rule, were not much concerned with the creation and dissemination of culture. It was only the small priviledge class of Brahmanas who acted 'as the custodians of culture. Of course there must have been a few talented and cultural people among the Kshatriya aristocracy, but the main-contribution to cultural growth came from the Brahmana class.

To the ancient law-givers, it appeared the most natural thing, that each person should do the work to which has was born, in the interest of social stability. The result was most disastrous, in so far as the large majority of the people at the bottom of the social ladder were concerned, who on account of the lack of

education, could not make any contribution to the growth of culture and civilization. The Brahmana class, after the cultural effort of many centuries, was overcome by mental inertia and spiritual longuor, as there was no impetus or competition forthcoming from the other classes. It generally found, that a particular class, after a certain period, loses originality and the urge for creation, and gets into a condition of rut and formalism. At such a time, fresh vigour and creative effort are injected into society by the members of the hitherto uncreative classes. In a society, where there is no special restriction, whatsoever, on any member making his contribution to the fund of common culture the springs of originality and creativeness never dry up. In India the caste system made it impossible for the largest class of people to do any creative work except that of creating children. There is no wonder, therefore, it after a time, the cultural achievements came to a standstill, and decay set in, in all departments of cultural life.

A third factor, which made for cultural decay was the degradation of the position of women during, this period. In the Vedic age and long after that, we find many distinguished ladies making rich contributions to culture. Some of them even composed the Vedic hymns, but when gradually early marriages were instituted, and the boon of education was taken away from women, they were naturally disabled from taking part in cultural efforts. The child marriages, which became common during this period, also contributed very much to the decay of culture. In spite of the injuctions of the law-givers to the contrary, the parents, in the early centuries of the Christian era, went on marrying their daughters at the age of puberty. But by the end of the Gupta period, infant marriages became common. The result was that boys and girls began to engage in sexual activity, as soon as, if not before they attained the age of puberty, girls in most cases becoming mothers at the age of twelve or thirteen years, and giving birth to weak and puny children.

This premature sexual activity naturally had a most pernicious influence on physical and mental heath. In this connection, the findings of Dr. J.D. Unwin in his monumental work, "Sex and Culture" should be of the greatest interest. As the result of his extensive researches carried on among peoples at different levels of culture of many years, he arrived at certain conclusions which, in the light of the wealth of detail on which they are

founded, many be regarded as practically certain and incontrovertible.

His most important conclusion is, that societies, which do not observe pre-nuptial chastity, and among whom opportunities for sexual indulgence are the greatest afer marriage, are always found without any exhibition of physical or mental energy. "Neither mental nor social energy can be manifested", says Dr. Unwin "except under certain conditions. These conditions arise when sexual opportunity is reduced to a minimum." Even in the same society, the group or community in which the greatest restraint is imposed upon sex, always displays the greatest energy and dominates the other groups. Agggressiveness and energetic behaviour are the characteristics of those communities, in which there is a check on prenuptial sex indulgence and restriction on post-nuptial sexual opportunity by means of strict monogamy. "Some times", says Dr. Unwin "a man has been heard to declare, that he wants both to enjoy the advantages of high culture and to abolish compulsory continence. The inherent nature of human organism, however, seems to be such that these desires are incompatible, even contradictory. Any human society is free to choose, either to display great energy or to enjoy sexual freedom : the evidence is, that it cannot do both for more than one generation."

There is no reason to doubt, in the light of the scientific findings of Dr. J.D. Unwin, that the institution of early marriages amongst Hindus was an important factor leading to an all-round decay in Indian society.

The condition of decay continued throughout the medieval period. In that period, a number of saints appeared on the Indian horizon, who preached sentimental devotionalism, and the doctrine of renunciation, as a sort of escape from the unhappy condition, brought about by the Muslim rule. We also find these saints, most probably under the influence of Islam, preaching against caste system and distinctions of high and low, and a number of other reforms, but their work did not appear to have any great influence, and so, when we come to the modern times, we find Hindu society more or less just as it was towards the end of the first millennium of Christian era.

A Story of Indian Culture

Date of Pub. : 30.5.2019 Posted at - NIE-H.O. Postal Date : 2-3 June 2019
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2017-2019

गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना।
वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम्।। यजु. 20-81 ।।

ऋषिः- गृत्समद, देवता-अश्विनौ, छन्दः- विराड् गायत्री

हे विद्वान शिक्षक और न्याय दिलाने वाले लोगो! तुम गाय की तरह धीमे या घोड़े की तरह तीव्र गति से चलो, जो भी तुम्हारे लिए उचित हो। परंतु सत्य के मार्ग पर चलो और मनुष्य के कल्याण के मार्ग पर चलो। हमें भी ऐसे मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

O learned teachers and men of justice! you go slow like a cow or fast like a horse whichever is fair to you but go on the path of truth. You go on the path of welfare of the people. We should also follow the same path. (Yajurveda 20-81)

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58